क्या शिक्षा शांति में सहायक हो सकती है?

भाग-III

कृष्ण कुमार

अनुवाद : लतिका गुप्ता

शांति और शिक्षा के पर्चे के अभी तक प्रकाशित अंश में हम इस मोड़ पर आ चुके हैं कि शिक्षा सांस्कृतिक मनमुटाव को बढ़ावा देती है जिसके लिए स्कूल और घर के संबंध को समझने की जरूरत है। अब प्रस्तुत है इससे आगे-

तीन मॉडल

शांति का परिप्रेक्ष्य विकसित करने के नज़रिए से देखें तो अतीत ज्ञान का सबसे ज्यादा चुनौतीपूर्ण क्षेत्र होता है। इस मामले में स्कूली शिक्षा की भूमिका काफी नाजुक हो जाती है। खास तौर पर घर पर होने वाले बच्चों के समाजीकरण के हवाले से देखें तो इस भूमिका में दो विकल्पों के बीच चुनाव करना होता है। शिक्षा या तो घर पर होने वाले समाजीकरण का पूरक बने या वैकल्पिक रूप में घर से मतभेद रखे और बच्चों को अतीत के प्रति नए रवैये और दृष्टिकोण सिखाए। शांति के लिए शिक्षा के संदर्भ में घर-स्कूल के रिश्तों को समझने के लिए मैं उस क्रमविन्यास का इस्तेमाल कर रहा हूं जो मैंने कुमार (2007) में प्रस्तुत की थी। जैसा कि चित्र 1 में दिखाया गया है, इसमें तीन मॉडल है। मॉडल 1 उन शिक्षा व्यवस्थाओं को दर्शाता है जिनमें घर पर होने वाले समाजीकरण और स्कूल के औपचारिक अधिगम में एक चिह्नित निरंतरता होती है। माडल 2 उन विपरीत मामलों को दर्शाता है जिनमें घर और स्कूल एक-दूसरे से जुदा होते हैं और एक दूसरे के प्रति उदासीन होते हैं। माडल 3 इस दोनों के बीच अंतःक्रिया और संधिक्रम की संभावना को प्रस्तुत करता है।

चित्र 1 : घर-स्कूल के रिश्ते के तीन माडल

भारत और पाकिस्तान में घर पर होने वाले समाजीकरण से मिली सीख और स्कूली शिक्षा के बीच जटिल रिश्ते को समझने में यह माडल हमारी मदद करते हैं। दोनों ही देशों को विरासत में औपनिवेषिक नीतियां मिलीं जिनके कारण स्कूल घर की संस्कृति से बेगाना बना रहता है। आजादी के समय से ही स्कूल में धार्मिक शिक्षा को लेकर दोनों देशों ने अलग रास्ते अपनाए हैं। पाकिस्तान में वह स्कूल की दिनचर्या का जरूरी हिस्सा है जबकि भारत में अल्पसंख्यक स्कूलों को छोड़ दें तो यह वर्जित है (युनेस्को एमजीआईईपी, 2017)।
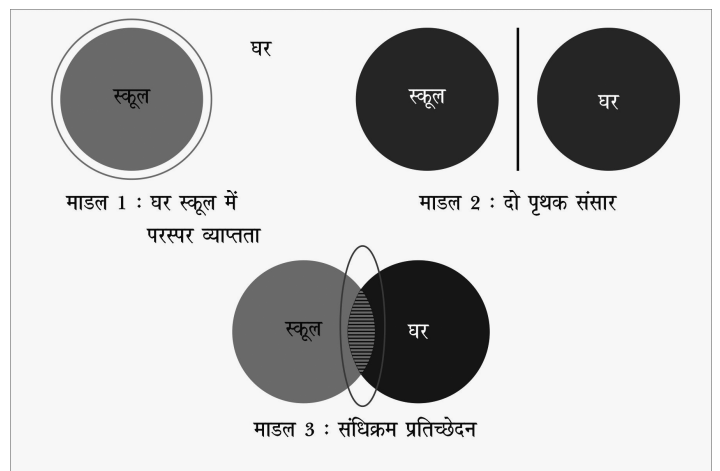
इसलिए, पाकिस्तान में शैक्षिक नीति माडल 1 का पालन करती है और भारत में वह माडल 2 का पालन करती है। हाल के दशकों में पाकिस्तानी नीति में इस्लामीकरण के उद्यम ने धर्म आधारित राष्ट्रवादी परिप्रेक्ष्य को बढ़ावा देने के लिए स्कूली शिक्षा के इस्तेमाल को और ज्यादा प्रखर किया है।

भारत में नीतिगत परिदृश्य काफी जटिल और अस्थिर रहता है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 (एनसीईआरटी, 2006) माडल 3 को लागू करने के प्रयास की ओर इशारा करता है। यह लक्ष्य राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 पर आधारित एनसीईआरटी द्वारा तैयार की गई पाठ्यपुस्तकों में दिखलाई पड़ता है। केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के मानकों के तहत चलने वाले स्कूल एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तकें इस्तेमाल करने के लिए बाध्य होते हैं। ऐसे स्कूल भारत के कुल स्कूलों में केवल 10 प्रतिशत हैं। अन्य स्कूलों में राज्य के स्तर के पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकें लागू की जाती हैं। हाल के वर्षों में कई राज्यों में राजनीतिक विचारधारा के रूप में धर्मिक राष्ट्रवाद ने पकड़ बनाई है। इसने कई राज्यों में पाठ्यपुस्तकों एवं स्कूल के वातावरण पर प्रभाव डाला है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 के तहत धार्मिक परिप्रेक्ष्य एवं शांति के मूल्यों को बढ़ावा देने के प्रयास राज्यों में कोई खास सफल नहीं हुए हैं। इस प्रयास के दो प्रस्ताव थे : एक पाठ्यचर्या एवं पाठ्यपुस्तकों को फिर से विकसित करना ताकि इतिहास तथा संस्कृति पर आलोचनात्मक चिंतन संभव हो सके; और दूसरा शांति के मूल्यों को बढ़ावा देना जैसे कि सहिष्णुता, अहिंसा एवं मतभेदों का बातचीत के द्वारा समाधान करना। हालांकि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा के क्रियान्वयन को लेकर कोई बड़ी समीक्षा नहीं हुई है लेकिन भारत की विस्तृत एवं जटिल व्यवस्था पर इसका सामान्य प्रभाव निर्विवाद है। यह कितने समय तक कायम रहेगा यह देखा जाना बाकी है।

नागरिक एवं राष्ट्र

बचपन में केवल इतिहास के विषय में ही सामूहिक मनमुटाव नहीं पनपते। नागरिक जिम्मेदारियों एवं राजनीतिक सीमाओं के प्रारंभिक वर्षों में ही परिचय दे देने से इतिहास की भूमिका को पूरकता मिलती है। नागरिक शास्त्र एवं भूगोल में अधिकतर स्कूली पाठ्यचर्या बच्चों के संज्ञानात्मक विकास से असंगत होती है। नक्शों में शामिल गणितीय एवं ज्यामितीय अवधारणाओं को सीखने से बहुत पहले बच्चों का नक्शों से वास्ता पड़ जाता है जिनमें राष्ट्रों की सीमाएं दिखाई गई होती हैं। ज्ञान के एक और क्षेत्र में बच्चों के संज्ञानात्मक विकास से असंगत सीमाओं वाले राष्ट्र से जुड़ी अस्मिता स्कूल के शिक्षण के समानांतर चलती है। वह क्षेत्र है राज्य एवं सरकार के प्रकार्यों का।

कई देशों में यह ज्ञान व्यक्त रूप से राष्ट्र-राज्य से वफादारी की मांग करता है और उस वफादारी के सबूत के रूप में अपनी जान देने की सम्मति की मांग करता है। भारत में नागरिक शास्त्र की पाठ्यचर्या के इस पहलू में आमूलचूल परिवर्तन आए हैं जिनके तहत इस विषय को 'राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन' का नया नाम दिया गया है। यह नया विषय सामाजिक दुनिया कैसे बनती है और कैसे पुराने सामाजिक विभाजनों को राजनीतिक मिजाज वाले मानवतावादी दावों से चुनौती दी जा सकती है इस बारे में बच्चों की जिज्ञासा को जगह देता है (गुप्ता, 2015)। हांलाकि, ज्ञान की यह नई रचना भारत के हरेक क्षेत्र में फैल नहीं पाई है, फिर भी यह नागरिक शास्त्र के पुराने शिक्षण से अच्छा खासा विचलन है जो पाकिस्तान के सामाजिक अध्ययन की पाठ्यचर्या पर आज भी हावी है। जी हां, वहां सामाजिक अध्ययन, 'पाकिस्तान अध्ययन' नामक विषय के अंतर्गत पढ़ा जाता है जिसका लक्ष्य सीधे-सीधे सैन्यवादी, मर्दाने राज्य के प्रति अदम्य प्रतिबद्धता जगाना है (सैगोल, 2015)।

दुनिया के हरेक हिस्से में राष्ट्रवाद एवं बच्चों की शिक्षा की मजबूती परस्पर जोड़ी जाती है। मत प्रचार के लिए बच्चों की शिक्षा के इस्तेमाल होने का अपना एक इतिहास है जिसका अस्मिता-चालित राजनीतिक विचारधाराओं के उत्थान से गहरा नाता है। कई देशों में प्रबल मौजूदा राजनीतिक एवं आर्थिक माहौल में इन राजनीतिक विचारधाराओं ने उपजाऊ जमीन पा ली है (इकोनॉमिस्ट, 2017)। हाल में हुए 22 देशों की पाठ्यचर्या नीतियों के अध्ययन में निकल कर आया कि एशिया में शिक्षा के लक्ष्य के रूप में राष्ट्रीय अस्मिता को बढ़ावा दिया जा रहा है (युनैस्को, 2017)।

सैन्यीकरण या रेजमेंटेशन

जब शिक्षा के लक्ष्य के रूप में गहरी राष्ट्रवादी भावना को शुरुआती वर्षों से बढ़ावा दिया जाए तो वह स्कूलों में सैन्यीकरण या रेजमेंटेशन को तीक्ष्ण कर देती है। दुनिया के हर हिस्से में सैन्यीकरण या रेजमेंटेशन सार्वजनिक शिक्षा से गहरे स्तर पर जुड़ा रहा है। कई लोग इसको शिक्षा का अभिन्न अंग मानते हैं व इस हद तक स्वीकार करते हैं कि यह पढ़ाने के लिए सामर्थ्य बढ़ाने वाली स्थितियां पैदा करता है। सही में, यह मत इतना आम और प्रचलित है कि शिक्षा को ज्यादा बाल-केन्द्रित बनाने और सैन्यीकरण या रेजमेंटेशन को कम करने की दलील निरर्थक और बेकार कह कर खारिज कर दी जाती है। अधिगम की पुरानी अवधारणाएं मांग करती थीं कि बच्चे की दिशाहीन ऊर्जा को नियंत्रण में लाया जाए और ऐसा करने के कठोरतम तरीकों को भी विधि सम्मत माना जाता था। किसी भी तरह का शारीरिक दंड देने के शिक्षक के अधिकार को उसकी सत्ता का महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। अनुपालन की संस्कृति बनाने के लिए स्कूल एवं कक्षा में कई तरह की पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है। ये स्कूली दिनचर्या के इस हद तक अभिन्न अंग हो चुके हैं कि इनको अकसर अच्छी शिक्षा का सूचक माना जाता है। बच्चों की वैयक्तिकता की अभिव्यक्ति को दबाने में स्कूल की गुणकारिता की तारीफ में 'अच्छा अनुशासन' जैसे जुमलों का इस्तेमाल किया जाता है।

अनुशासन शब्द का इस्तेमाल अक्सर एक तरह की नैतिक शिक्षा के लिए किया जाता है। अनुशासन एवं नैतिक शिक्षा पर विचारों का विश्लेषण करते हुए, क्लार्क (1998) ने समझा कि पारंपरिक विचार बेतुके और असाध्य हैं फिर भी वे हावी रहते हैं। स्कूली वर्दी, बाल तथा जूतों का स्टाइल, नारे लगाना, सैन्यवादी अभ्यास एवं परेड पर जोर देना एक सही से चल रहे स्कूल के लक्षण माने जाते हैं। वे एक साथ मिलकर स्कूली अधिकारियों को दक्षता एवं प्रबंधन का ठोस सबूत देने में सक्षम बनाते हैं। वे उस 'हैबिटस' के कारकों की तरह काम करते हैं जो बच्चों के ऊपर स्वायत्त सामर्थ्य हासिल कर लेते हैं। बोर्दियो (1991) के 'हैबिटस' के सिद्धांत के आधार पर विभिन्न शैक्षिक व्यवस्थाओं में शोधकर्ताओं ने उसकी प्रतीकात्मक शक्ति को हिंसा का एक रूप कहा है। स्कूली संस्कृति के एक अध्ययन में, यादव (2014) ने सुबह की प्रार्थना सभा में सैन्यीकरण या रेजमेंटेशन के कई पहलुओं को पहचाना। उससे स्कूलों को ऐसा वातावरण बनाने में मदद मिलती है जिससे बच्चों की व्यक्तिगत विशेषताएं आर्केस्ट्रा जैसे समुच्चय में डूब जाती हैं। कई देशों में एक स्कूली वर्दी में व्यक्तिगत अस्मिताओं का सम्मिश्रण आम बात है। होरवत एवं ऐन्तोनियो (1999) ने विश्लेषण किया है कि नियंत्रण के इन तरीकों का अफ्रीकी-अमेरिकी लड़कियों पर क्या असर पड़ता है।

मूल्यांकन स्कूल का एक और पहलू है जिससे सैन्यीकरण या रेजमेंटेशन को गहराने और बढ़ते जाने की उपजाऊ जमीन हासिल होती जाती है। कक्षायी और सालाना परीक्षाएं समकालीन स्कूली संस्कृति का अभिन्न अंग होती हैं। उनका उपयोग न केवल बच्चों को मेहनत करने हेतु प्रेरित करने के लिए किया जाता है बल्कि उनमें प्रतियोगिता की भावना जगाने के लिए भी। इस दूसरे पहलू ने प्रधानता पा ली है क्योंकि इसमें वृहत् समाज में व्याप्त बाजार-केन्द्रित नीतियों की गूंज सुनाई आती है। बाल-केन्द्रित शिक्षण के प्रयास उस पकड़ को ढीली करने में अक्षम रहे हैं जो परीक्षा ने बच्चों, अविभावकों और शिक्षकों के दिमाग पर बना रखी है। पाठ्यचर्या संबंधी प्रगतिवादी सुधारों के प्रयासों के विरोध की अभिव्यक्ति इस हवाले से होती है कि परीक्षा से फेल होने का भय बना रहता है और अनुशासन को प्रोत्साहन मिलता है। परीक्षा में सफलता को लेकर भावनात्मक मूल्यों का जो निवेश किया जाता है उसे शिक्षकों एवं अविभावकों की गहरी स्वीकृति हासिल होती है। स्कूल के शुरुआती स्तरों से ही लागू होकर परीक्षा उस आतंक को बढ़ावा देती है जिसे स्कूल पैदा करता है। 2009 में भारतीय संसद से पारित शिक्षा के अधिकार कानून ने उस परीक्षा व्यवस्था को सतत् एवं समग्र मूल्यांकन में बदल दिया था जो बच्चों को सालाना रूप से पास एवं फेल की श्रेणी में बांट देती थी। यह बदलाव अब पल्टा जा चुका है।

स्कूल में सीखने पर परीक्षा में फेल होने जैसे नतीजों के भय लादे जाने को अनुमति दी जा रही है। कादयान (2008) ने भय के उस आम शासन की व्याख्या की है जिसे बच्चे का दिमाग आत्मसात कर लेता है। उनका कथन है :

''स्कूल के कई हिस्सों के बारे में मैंने बस सुना था लेकिन उन्हें देखा नहीं था। ऐसे कुछ हिस्से भी होंगे जिनके बारे में मैंने सुना भी नहीं था। सिर्फ स्कूल की इमारत को जानने के लिए मैं अपना जीवन कैसे दांव पर लगा देती जब मेरा हरेक प्रयास मुझे वापिस कोटरो में ले जाने की संभावना रखता था। मेरी अपनी सिर्फ एक सीट थी। मुझे हरेक उस कारण से नफरत थी जिसके कारण मुझे उससे उठना पड़ता था। क्या पता कब कौन मेरी सीट यह कह कर छीन लेता कि मैं एक बुरी विद्यार्थी थी?''

कादयान की आत्मकथा उस असर को उजागर करती है जो, पूर्ण शारीरिक नियंत्रण एवं विलगाव के जरिए स्कूल के माहौल के कारण बच्चे के मानस पर पड़ता है। स्कूल में बहुत बच्चों की बौद्धिक क्षमताएं कम उम्र में ही कुंद हो जाती हैं। ऐसा कोई जानबूझ कर नहीं करता हालांकि कुछ परिस्थितियों में ऐसा भी किया जाता है। स्कूल की दिनचर्या में बच्चे के शरीर का सैन्यीकरण या रेजमेंटेशन गहरे शामिल होता है। इसमें बैठना, खड़े होना एवं चलना निहित है लेकिन सबसे महत्वपूर्ण रूप से इसमें शामिल है बच्चे कैसे बात करें, पूछे गए प्रश्न के जवाब कैसे दें एवं प्रश्न कैसे पूछें और इन सब की आज्ञा मिलती भी है कि नहीं। इस चर्चा में फूको की आतंक की रचना की गूंज सुनाई देने लगी है जिसको उन शिक्षण शास्त्रीय पद्धतियों के जिक्र से पूरा करने की जरूरत है जिनसे बच्चों का समय सत्ता की असंगत और पुनरावर्ती गतिविधियों से बर्बाद किया जाता है। लाडूसा (2015) ने ऐसी गतिविधियों की व्याख्या वाराणसी के स्कूलों में किए अपने भाषा के अध्ययन में की है। उनके द्वारा वर्णित कुछ गतिविधियां 'टाइम पास' रणनीति का हिस्सा होती हैं जिनसे बच्चे स्कूल को ऐसी जगह के रूप में आत्मसात कर लेते हैं जहां निरर्थकता एवं तुच्छता ही सफलता तथा बने रहने की कुंजी है।

प्रत्युत्तर तर्क

1960 और 1970 के दशकों में अमेरीका, इंग्लैंड, और दूसरे देशों में जो आलोचनात्मक व्याख्या हुई उसने उस गहराई को उजागर किया जिस पर जा कर बच्चों की बौद्धिक क्षमताएं कुंद हो जाती हैं। होल्ट की किताब *'बच्चे असफल कैसे होते हैं'* उस समय की उत्कृष्ट कृति है। कोजोल (1968) की *'डैथ एट एन अर्ली एज'* हमें याद दिलाती है कि बौद्धिक क्षमताए कुंद होने की प्रक्रिया में राजनीतिक प्रकार्य शामिल होते है। गरीबों के हाशियाकरण से इन प्रकार्यों से सामाजिक एवं आर्थिक वर्चस्व की संरचना बनी रहती है। बच्चों की बौद्धिक क्षमताओं को कुंद करने में सैन्यीकरण या रेजमेंटेशन एक उपकरण के रूप में काम करता है यह 1960 के दशक से पहले दर्शनशास्त्रीय रुचि का विषय होता था। बाल-केन्द्रित तरीकों की दलील को युद्ध ग्रस्त वर्षों के प्रगतिशील लेखकों, विचारकों और शिक्षणशास्त्रियों से राजनीतिक बल मिला। उनमें से मौंटेसरी, बर्टंड रसल और श्री अरविंद ने अर्थपूर्ण ढंग से लिखा कि स्कूल का सामूहिक नियंत्रण बच्चों को बड़े होने पर राजनीतिक प्रोपागैंडा की तरफ झुकाता है खासकर सरकारी राजनीतिक प्रोपागैंडा। उन्होंने राज्य द्वारा प्रतिबिंबित सामूहिक ईगो के खिलाफ आगाह किया क्योंकि वह भविष्य को आकार दे सकने वाली सृजनात्मक क्षमताओं का दमन करता है। टैगोर ने भी राजनीतिक राष्ट्रवाद की आलोचना की कि वह मानवीयता के मूल्यों और आदर्शों का हनन करता है। अपनी कहानी *'तोते की शिक्षा'* में उन्होंने उस त्रासदी को पकड़ा है जिसमें बच्चे की प्राकृतिक प्रकृति राज्य की कठोर सत्ता से भिड़ती है और कुचली जाती है। विचारकों की इस श्रृंखला में हाल में कृष्णमूर्ति, पौले फ्रेरे और इवान इलिच का नाम जुड़ा है। वे सीखने के सार्वजनिक स्थलों में आमूलचूल बदलाव की संभावना को लेकर आशावादी थे। उन्होंने प्रचलित शिक्षा की कटु आलोचना की और हमें याद दिलाया कि राज्य समेत समाज की अन्य संस्थाओं में बदलाव के बिना शैक्षणिक सुधार नहीं हो सकते।

शिक्षा की आलोचना और उसके सुधार के तरीकों की खोज में अगर हम दर्शनशास्त्रीय मार्गदर्शन ढूंढ़ें तो हम गांधी के राजनीतिक और शैक्षिक प्रयोगों में एक सृजनात्मक उत्तर पाएंगे। एक शांतिवादी विचारक के रूप में और उनकी अहिंसात्मक संघर्ष की विरासत उनको विचारों के इतिहास में एक महान व्यक्ति बनाती है (परेल, 2016)। वे हिंसा एवं आर्थिक शोषण के चक्र को तोड़ने के लिए जीवन भर शैक्षणिक तरीके ढूंढने में लगे रहे। शिक्षा की पुनर्रचना में हतकरघा के इस्तेमाल के उनके प्रस्ताव को केवल आर्थिक मायनों में देखा जाता है मतलब आत्मनिर्भरता और हाथ

के काम के प्रति बदलते दृष्टिकोण के मायने की तरह। गांधी की नई तालीम की पारंपरिक समझ की दो हाल की विवेचनाओं में आलोचना की गई है (श्रीनिवासन, 2017 एवं गौड़, 2016)। श्रीनिवासन का कहना है कि गांधी के ज्ञान पर विचार नैतिक शिक्षा के सिद्धांत के संदर्भ में परिभाषित किए जाने चाहिए जो इंसान के सामाजिक अस्तित्व की समस्याओं को वृहत मायनों में समझते हैं। गौड़ ने उनकी शिक्षा शास्त्रीय योजना को स्वराज के संदर्भ में देखा है जिसमें वे आजादी को परिभाषित करने का एक तरीका सुझाते हैं। गौड़ ने स्वराज की अवधारणा की मदद से गांधी द्वारा शुरू किए स्कूल आनंद निकेतन का अध्ययन किया है। पर्यावरण शिक्षा और शिल्प के काम से संबंधित बच्चों की गतिविधियों और जीवन से ऐसे पर्याप्त प्रमाण मिले हैं कि गांधी के शिक्षण शास्त्रीय सिद्धांत से स्वयं संचालित अधिगम को प्रोत्साहन मिलता हैं।

देवी प्रसाद के काम में भी समान प्रमाण और दिशा मिलती है। वे कला के शिक्षक थे और दुनिया में प्रसिद्ध शांति विचारक। टैगोर और गांधी द्वारा शुरू स्कूलों में कला शिक्षण करके उन्होंने अपना तर्क पूरा निर्मित किया जिसमें सौन्दर्यपरक अनुशासन की प्रकृति और तर्क की व्याख्या की (प्रसाद, 1998)। उसके तहत बचपन में कला शिक्षा का उद्देश्य आजादी होता है। अपने शिक्षण के अनुभव का विश्लेषण करते हुए प्रसाद ने प्रमाणित किया कि आजादी के उद्यम से बच्चे आत्म-चेतना, संतुलन, अनुपात एवं सममिति सीखते हैं जिससे वे शांति की तरफ बढ़ते है। गांधी के राजनीतिक विचार भी हमें इतिहास और नागरिक शास्त्र जैसे विषयों को पुनर्व्यवस्थित करने की दृष्टि देते हैं। अपने वर्तमान प्रारूप में ये विषय राष्ट्रवादी बैर बढ़ाने में जो योगदान देते हैं उसकी गांधी के नजरिये से आलोचना की जानी चाहिए जो उन्होंने आधुनिक सभ्यता और उसके भय तथा आक्रामकता बढ़ाने वाली प्रवृत्ति के बारे में विकसित किया।

खण्ड 4 समसामयिक परिदृश्य

ऊपर चर्चित शिक्षा में बाल-केन्द्रित विचारों एवं प्रक्रियाओं की विरासत से हमें शांति शिक्षा के तत्व मिलते हैं। ये हैंः बच्चे के अभिकर्तृत्व को पहचानना और उसके अनुभवों पर चिंतन कराने में शिक्षक की भूमिका। अगर हम इन आदर्शों को आधार बनाते हुए प्रचलित दौर का परीक्षण करें तो पाते हैं कि जिन व्यवहारों को चुनौती दे दी गई थी और जिन की जगह बाल-केन्द्रित पद्धति आ गई थी उनका पुनरुत्थान हुआ है। इस पुनरुत्थान में बड़ा दम है और यह इतना व्याप्त है कि सैन्यीकरण या रेजमेंटेशन की किसी भी आलोचना का प्रतिरोध करता है नहीं तो उसे अव्यवहारिक तो बता ही देता है।

सूचना प्रसार की तकनीक में विकास होने से शिक्षा में नीति एवं स्कूली शिक्षण के रोजमर्रा के जीवन में यांत्रिक विचारों को बढ़ावा मिला है। एलकाइंड (प्रसाद, 1998) द्वारा वर्णित “नया तकनीकी माहौल” बच्चे को ऐसी ताकतों का मोहरा बना देता है जिनको अविभावक एवं शिक्षक पूरी तरह समझ भी नहीं पाते। नव-व्यवहारवादी पाठ्यचर्या और शिक्षणशास्त्र की वकालत ने शिक्षक की स्वायत्ता को खत्म कर दिया है। इन बदलावों की अगुवाई कर रहे हैं प्रबंधन विषेशज्ञ जो शिक्षा को एक और ऐसे क्षेत्र की तरह मानते हैं जिसमें वे कार्यक्षमता बढ़ा सकते हैं। उनके हस्तक्षेप के कारण शिक्षा में मौजूद लोकतांत्रिक संभावनाएं नष्ट हुई हैं जो उसको सामाजिक संस्था के रूप में विकसित करने के लिए उपलब्ध थीं। उभरते हुए शिक्षणशास्त्रीय परिदृश्य में प्रतियोगितावाद एवं जवाबदेही को बढ़ावा देने के लिए परीक्षण का बोलबाला है।

मानव पूंजी सिद्धांत की अनुगूंज लिए नीतियों के गट्ठर पढ़ने एवं पढ़ाने के यांत्रिक मॉडलों को सही ठहराते हैं। ऐसे में शांति शिक्षा एक यंत्र की तरह सामने लाई जाती है जिसके कुछ ठोस फायदे हों। एक तो है कि शांति की अवधारणा को कुछ व्यवहारों तक सीमित कर दो जिनको नापा जा सके और जिनमें फेर बदल किया जा सके। इस तस्वीर को पूरा करने के लिए हमें आर्थिक नीतियों की तरफ जाना होगा जिनके कारण हाल की शिक्षा के बदलाव आए। अक्सर इन नीतियों के लिए नव-उदारवादी शब्द का प्रयोग किया जाता है जो सामाजिक नीति के हरेक पहलू में निजीकरण की तरफ झुकाव का हवाला देता है। शोध दिखाते हैं कि पूरी दुनिया में युद्ध-सामग्री पर होने वाले खर्चे

में उग्र बढ़त हुई है जो नव-उदारवाद और सैन्यवाद में जोड़ बिठाती है (साइफर, 2007)। इस आर्थिक प्रचलन से पता चलता है कि एक विचारधारा के रूप में क्यों राष्ट्रवाद की बहाली हो रही है।

धार्मिक-सांस्कृतिक आधारों पर परिभाषित राष्ट्रवाद भारत में प्रबल हुआ है जिससे धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीय अस्मिता के पुराने दावे ठंडे पड़ गए। धर्मनिरपेक्षतावाद के खण्डन और सार्वजनिक मीडिया के द्वारा धार्मिक अलगाववाद के प्रोपागैंडा के चलते उत्तर भारत के कई इलाके पाकिस्तान जैसे हो गए हैं जहां धर्म राष्ट्रीय अस्मिता का चिह्न रहा है। राजस्थान में राज्य के स्तर पर बदली गई स्कूली पाठ्यपुस्तकों में राजनीतिक गठन लिए क्षेत्रीय अस्मिता को बढ़ावा देने का प्रयास किया गया जिसके लिए मध्ययुगीन संघर्षों को विकृत कर के आधार बनाया गया। नया इतिहास मध्ययुगीन योद्धाओं की धर्मिक पहचान का इस्तेमाल करके समसामयिक भारत के लिए बहुसंख्यकवादी राष्ट्रीय अस्मिता को सही ठहराता है। प्रादेशिक पाठ्यपुस्तकों एवं पाठ्यचर्या का यह अकेला उदाहरण नहीं है जिसमें संप्रदायवादी राजनीति को बढ़ावा मिला। केन्द्र एवं प्रादेशिक स्तरों के बीच पाठ्यचर्या संबंधी नियोजन में हमेशा से गुणवत्ता एवं लक्ष्यों के स्तर पर फासला रहा है। जब हम इस बात पर ध्यान देते हैं कि प्रादेशिक पाठ्यपुस्तकें उन स्कूलों में इस्तेमाल होती हैं जहां समाज के गरीब तबके के बच्चे पढ़ते हैं तब समझ आता है कि कैसे सामाजिक-आर्थिक गैरबराबरी पाठ्यचर्या संबंधी सुधार की गूढ़ता को बढ़ा देती है।

उपसंहार

आइए भारत-पाक किस्से को वर्तमान के आर्थिक नीति के परिदृश्य में रखते हुए इस चर्चा का निष्कर्ष निकालें। जब तक शिक्षा की विषयवस्तु और तरीकों में बदलाव नहीं आता तब तक दीर्घकालीन दुश्मनी बरकरार रखने में शिक्षा की भूमिका में बदलाव नहीं आएगा। ऐसे बदलाव के लिए शांति शिक्षा मौका देती है कि हम प्रचलित नीतियों और प्राथमिकताओं पर प्रश्न उठाएं। वह खुद शिक्षा पर ही सवाल उठाने का आग्रह करती है। इससे पहले कि शिक्षा शांति में योगदान दे पाए उसकी अपनी मानववादी संभावनाओं को बचाना होगा। शिक्षा को संपूर्ण सैन्यीकरण या रेजमेंटेशन का औजार बनाने का जो हर तरफा प्रयास हो रहा है शिक्षा शांति को उसके प्रतिरोध के ठौर की तरह भी देखा जा सकता है। शिक्षा शांति को प्रतिरोधी ताकत बनाने के लिए उसके मुख्य घटकों की अभिव्यक्ति जरूरी है, यह घटक हैं : सीखने में व्यक्तिगत अर्थ बहाल हो, संस्थागत शिक्षा की किसी भी प्रक्रिया में विवेचनात्मक पड़ताल केन्द्र में हो और स्थाई शांति के लिए न्याय का महत्व।

इन मुख्य घटकों और उनके बीच की पारस्परिक क्रिया से शिक्षा में सुधार की दिशा मिल सकती है। शिक्षा का एक बड़ा संकट है कि वह स्कूल या कालेज के अनुभव को सार्थक नहीं बना पाती। राज्य की संस्था के रूप में स्कूल बचपन का सर्वत्र लागू अनुभव बन चुका है। स्कूल का आकर्षण और औचित्य निहायत ही बढ़ गए हैं। स्कूल की शिक्षित करने की क्षमता साथ ही उसकी स्वायत्तता और उन मूल्यों को बनाए रखना जो शिक्षा की अवधारणा में ही निहित होते हैं जो कि घट गए हैं (मिरि, 2014)। आर्थिक और राजनीतिक मांगों में ऐतिहासिक बदलावों ने शिक्षा पर असर डाला है और जिज्ञासा व खोजबीन के माध्यम से अर्थ की तलाश में युवा की मदद करने की इसकी क्षमता को प्रभावित किया है। स्कूल सुधार के लिए जरूरी है कि शिक्षा पर इस बात के लिए विश्वास बना कर रखा जाए कि वह दुनिया को समझने के मायने दे सकती है। वैश्विक नागरिकता के विचार से कुछ मूल्यवान ऊर्जा और दिशा मिलती है लेकिन वह यांत्रिक रूप से पाठ्यचर्या के कुछ जोड़-तोड़ तक सीमित न हो। विवेचनात्मक पड़ताल में लिप्त शिक्षा का निहितार्थ होता है अपने आप को एक एतिहासिक दौर में रख पाना और समझ पाना कि हम वहां तक कैसे पहुंचे ताकि हम आज की समस्याओं पर काम कर पाएं।

किसी विवाद का अध्ययन करते हुए विवेचनात्मक पड़ताल हमें अपनी भावनात्मक ऊर्जा को पहचाानने और उसके निर्गमन में मदद करती है। जब विवाद में डूबा अतीत पड़ताल के जरिए निकल कर आता है तो हमें यह अंदाजा लगााने का मौका मिलता है कि शांति के लिए किस फलक पर जाकर न्याय की जरूरत है। यह जरूरी है अगर भविष्य को

अतीत और वर्तमान से अलग करना है। शिक्षा एक परिवर्तनशील ऊर्जा बन सकती है अगर शिक्षार्थी उसे मानसिक तलछट में जमे अतीत की पड़ताल का मौका दे। ऐसे में बच्चे वह विकसित करेंगे जिसे यशपाल (2006) ने ''समझ का स्वाद'' कहा है। वह हमारे बच्चों के वर्तमान को सृजनात्मक, हितकारी एवं मजेदार बना देगा।

इस तरह से परिभाषित, बाल-केन्द्रित बनाने के लिए शैक्षिक सुधार से आशय होगा उसकी सैन्यीकरण या रेजमेंटेशन की शक्ति में ढील देना। इस शक्ति के कई स्रोत हैं और इसका वास स्कूल की रोजाना की संस्कृति में रहता है। स्कूल में शिक्षा की प्रक्रिया में निहित सैन्यीकरण या रेजमेंटेशन के अलावा एक आदेश राज्य से आता है जो स्कूल पर राष्ट्रवादी आदर्श और कल्पना को बढ़ावा देने की जिम्मेदारी थोपता है। इसलिए स्कूल राज्य के हाथ में बच्चों में जीवन के शुरू में ही राज-भक्ति जगाने का एक औजार बन जाता है। यह प्रक्रिया स्कूल पर दवाब बनाती है कि वह शिक्षा के मानवतावादी मूल्यों की अवहेलना करे और बस एक समर्पित नागरिक बनाने में जुट जाए। यह शंका रूसो ने जताई थी कि राज्य मानवता की बजाए नागरिक की वफादारी को वरीयता देने के लिए शिक्षा का इस्तेमाल करेगा (सोतार्द, 1994)। आज के समय में उनका प्रश्न और भी प्रासंगिक हो गया है कि क्या हम बिना मानव को आहत कर नागरिक को पोषित कर सकते हैं। राष्ट्र-राज्यों में दुश्मनी के असंख्य मामलों में शिक्षा एतिहासिक रूप से वंशानुगत दुश्मनी की चेतना को स्पष्ट रूप से बढ़ावा देती है और अतीत से सामंजस्य बिठाने की क्षमता कम कर देती है (फ्रबर्ग एवं शुंग, 2017; कुमार, 2003)। शिक्षा के द्वारा मानवतावादी आदर्शों एवं मूल्यों की बहाली तभी संभव है जब शिक्षा का खुद का पुनर्निर्माण हो जो शिक्षा की अवधारणा और व्यवस्था के बीच फासले को पाटे। ◆

लेखक परिचय : जाने-माने शिक्षाविद्, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् के पूर्व निदेशक और दिल्ली विश्वविद्यालय के केन्द्रीय शिक्षण संस्थान से सेवानिवृत्त।

संपर्क : anhsirk.kumar@gmail.com

संदर्भ :

Berger, P. and Luckmann, T. 1966. The Social Construction of Reality (New York: Anchor Books).

Bourdieu, P. 1991. Language and Symbolic Power (Adamson, Camb: Polity)

Bruner, J. 1987. Actual Minds, Possible Worlds. (Cambridge, Mass: Harvard University Press)

Clark, C 1998. 'Discipline in Schools' British Journal of Educational Studies (46:3) pp. 289-301

Cohn, B. 1987. An Anthropologist among the Historians. (Delhi: Oxford)

Cypher, James M. 2007. 'From Military Keynesianism to Global Neo-liberal Militarism' Monthly Review (59:2)

Economist. 2017. 'Whither Nationalism?' Economist (December 19)

Elkind, David. 2003. 'Technology's impact on child growth and development' http://www.cio.com/.../david-elkind--technology-s-impact-on-child-growth-and-deve.

Frieberg, A. and Chung, M. (eds.) (2017). Reconciling with the Past: Resources and Obstacles in a Global Perspective (London: Routledge).

Gaur, Nidhi 2016. 'Learning through crafts: a study of an experimental school' Vidyapith (4)pp. 67-82..

Gupta, L. 2008. 'Growing up Hindu and Muslim' Economic and Political Weekly (43: 6-9).

Gupta, L. 2015. 'Making reflective citizens: India's new textbooks for Social and Political Life', in E. Vickers and K. Kumar (eds.) Constructing Modern Asian Citizenship (London: Routledge) pp 105-124.

Holt, John. 1964. How Children Fail. (New York: Pitman).

Horvat and Antonio. 1999. Anthropology and Education.

Kadyan, S. 2008. 'My Learning' Seminar (592: December).

Kakar, Sudhir. 1996. The Colours of Violence (Chicago: University of Chicago Press).

Krishnamurti, J. 1953. Education and the Significance of Life (Chennai: Krishnamurti Foundation).

Kozol, J. 1968. Death at an Early Age (New York: Barnes and Noble).

Kesavan, M. 2001. Secular Common Sense. (New Delhi: Penguin).

Kumar, K. 2001. Prejudice and Pride: School Histories of the Freedom Struggle in India and Pakistan (New Delhi: Viking/Penguin).

Kumar, K. 2003. 'Peace with the Past' Seminar (522).

Kumar, K. 2007. Battle for Peace (New Delhi: Penguin).

Kumar, K. and Oesterheld, J. (eds.) Social Change and Education in South Asia (New Delhi: Orient Blackswan).

Kumar, K. 2016. Education, Conflict and Peace (New Delhi: Orient Blackswan).

LaDousa, C. (2015). Hindi is our Ground, English is our Sky (Cambridge: Cambridge University Press).

Miri, Mrinal. 2014. Philosophy and Education (New Delhi: Oxford).

Parel, Anthony. 2016. Pax Gandhiana: The Political Philosophy of Mahatma Gandhi (Oxford: Oxford University Press).

Prasad, Devi. 1998. Art: The Basis of Education (New Delhi: National Book Trust).

Razzack, A. 1991. 'Growing up Muslim' (Seminar 387).

Russell, Bertrand. 1916/2004. Why Men Fight (New York: Cosimo Classics).

Saigol, R. 2015. 'The Making of the Pakistani Citizen: Civics Education and State Nationalism in Pakistan', in E. Vickers and K. Kumar (eds.) Constructing Modern Asian Citizenship (London: Routledge) pp 175-195.

Sheean, Vincent. 1949. Lead Kindly Light (New Delhi: Random House).

Sinha, D. (ed.) 1984. Socialization of the Indian Child) New Delhi: Concept).

Soetard, M. 1994 'Jean-Jacques Rousseau' Prospects (24: ¾) pp 423-437.

Srinivasan, S. 2016. 'The Cult of the Charkha: Gandhi on Education and Ethical Learning' Pragmata (3:1) pp. 100-123.

Tagore, Rabindranath. 2004. Selected Essays (New Delhi: Rupa).

UNESCO MGIEP. 2017 Rethinking Schooling for the 21st Century: The State of Education for Peace, Sustainable Development and Global Citizenship in Asia (UNESCO MGIEP 2017). https://unesdoc.unesco.org/images/0026/002605/260568e.pdf

Yadav, P. 2014. 'Vidyalayakisanskriti: ekadhyayan' (Unpublished M.Ed. dissertation, University of Delhi).

Yash Pal. 2006. "Foreword' in National Curriculum Framework- 2005 (New Delhi: NCERT).